© 2024 IJNRD | Volume 9, Issue 8 August 2024| ISSN: 2456-4184 | IJNRD.ORG

IJNRD.ORG ISSN : 2456-4184
INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD) | IJNRD.ORG
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारतीय ज्ञान परंपरा में सनातन विद्या

डॉ.राकेश सोनी*

*दर्शन विभाग, इं. गाँ. रा. ज. जा. वि. वि. अमरकंटक (म.प्र.)

ई मेल: rakesh.philosophy@gmail.com

भारत की ज्ञान परंपरा, समाज, संस्कृति और इसके दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों पर व्यापक प्रभाव को समझने के लिए यूरोप के विद्वानों ने **प्राच्य विद्या** नाम से एक नये स्कूल की स्थापना की थी. इस स्कूल ने कुछ अच्छे काम भी किये जिससे भारत को प्रकारांतर से कुछ लाभ भी हुआ. किन्तु, यह लाभ ठीक उसी तरह से था जैसे रेल आने से भारत के स्थिर समाज में थोड़ी सी गतिशीलता तो आयी लेकिन अंग्रेजों का उद्देश रेल की इस सुविधा का उपयोग जनहित में नहीं बल्कि अपने उपनिवेशवादी साम्राज्य को सुरक्षित, समृद्ध और व्यापक बनाना था. ठीक इसी प्रकार प्राच्य विद्या का उपयोग भी वे उपनिवेशवादी दृष्टि के समर्थन में व्यापक तर्क और प्रमाण जुटाने के लिए करते थे. इस विद्या के माध्यम से वे यह बतलाना चाहते थे की प्राचीन भारत आध्यात्मिक ऊँचाइयों को तो छुआ था किन्तु, विज्ञान और तकनीक का विकास न होने से धीर धीरे यह पतन की ओर क्रमश: चला गया. अत: उन्हें सभ्य और सुसंकृत बनाने के लिए ईसाई धर्म और विज्ञान की आवश्यकता थी, जिसे अंग्रेजों के आने से पूरा हो गया. एडवर्ड सईद की पुस्तक **ओरियंटलईज्म** इस तथ्य को अच्छी तरह से रेखांकित करती है. **प्राच्य विद्या** द्वारा गढ़ी गयी भारत की तस्वीर न केवल आधी अधूरी है बल्कि बहुत हद तक भ्रामक भी है. इसके पीछे का कारण यूरोपियन लोगों की **विज्ञान, दर्शन, धर्म, संस्कृति, इतिहास, धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र, विधि** आदि सम्प्रत्यों की एक रेखीय और सीमित समझ है, जो केवल शुष्क तर्क के अहंकार पर टिकी हुई है. इसके विपरीत जीवन और जगत के प्रति भारत का दृष्टिकोण **व्यापक, पूर्ण और एकीकृत होने के साथ-साथ बहुस्तरीय विविधताओं** को भी धारण करता है. यहाँ की समस्त परंपराओं में अंतर्विरोधों को आत्मसात करना सहज और स्वाभाविक प्रक्रिया का हिस्सा है. अत: भारत की ज्ञान परंपरा, समाज, संस्कृति आदि की व्यापक समझ के लिए हमें **प्राच्य विद्या** की जगह एक नयी विधि एवं दृष्टिकोण की आवश्यकता है जो **भारत को भारत** की दृष्टि से देखे.

सनातन एक ऐसा ही शब्द है जो अंतर्विरोधों को अपने साथ समेटे हुए है, अर्थात जो शाश्वत है और वर्तमान काल के परिवर्तनों को भी धारण करता है. इस शब्द को प्रायः सत्य या यथार्थ के लक्षण के अर्थ में प्रयोग किया जाता रहा है. किन्तु, इसी सत्य को जानने और रचने की एक विधि के रूप में **सनातन** शब्द को प्राय: नहीं देखा जाता है. **वस्तुतः सनातन एक विद्या (Sanatanology) भी है और विधि (Methodology) भी**. इसके माध्यम से सत्य को न केवल जाना जा सकता है बल्कि उसे रचा भी जा सकता है. **प्रस्तुत शोध पत्र में सनातन विद्या को अध्ययन विधि के रूप में समझने की चेष्टा की गयी है.**

परिचय

सनातन शब्द '**सना**' और '**तन**' शब्द से बना है. '**सना**' का अर्थ शाश्वत से है और '**तन**' का अर्थ वर्तमान से है, अर्थात ऐसा तत्व जो सदा से है, शाश्वत है और वर्तमान में भी अनुस्यूत है. यदि वर्तमान में तत्व के किसी स्तर या सतह या किसी गुण पर परिवर्तन हुआ है तो वह भी व्यापक रूप से तत्व का ही हिस्सा है. इस प्रकार ऐसा तत्व जो शाश्वत है, तीनो कालों में स्थिर है और साथ ही साथ देश काल और परिस्थिति के अनुसार यदि उसमे कोई परिवर्तन आया है तो उसे भी स्वीकार्य है, अर्थात **शाश्वत और परिवर्तन** दोनों ही गुणों से संपन्न तत्व को **सनातन** कहा जाता है. किन्तु, कुछ लोग सनातन के परिवर्तन वाले लक्षण को उपेक्षित कर केवल इसके शाश्वत वाले लक्षण पर ही सर्वाधिक जोर देते है इससे सनातन को समझने में कई बार भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है. अत: हमें दोनों लक्षणों पर ध्यान देना चाहिये. **सत्य** सदैव शास्वत और परिवर्तन के गुणों से संपन्न रहता है. भारत की परम्परा में **सत्य** और **सनातन** दोनों ही शब्द पर्यायवाची अर्थ में प्रयुक्त होते है. **तत्वमीमांसा** के सन्दर्भ में जो सत्य है वही व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक अर्थ में सनातन है.

सनातन को एक विद्या, ज्ञान की शाखा अथवा एक स्कूल के रूप में भी देखे जाने की आवश्यकता है. इस दृष्टिकोण के अनुसार भारत को **प्राच्यविद्या** की जगह **भारत को भारत की दृष्टि से** समझने की आवश्यकता है. **क्या है भारत की दृष्टि?** भारत जीवन और जगत को उसकी सम्पूर्णता में, एकीकृत इकाई के रूप में इसे व्यापकता में देखते हुये विभिन्न आयामों और विविधताओं को अपने

भीतर समेटकर देखता है, जिसका सूत्र वाक्य है- **अनेकता में एकता या एकता में अनेकता.** अनेकता अथवा विविधिता का फैलाव कितना हो सकता है, इसका पूरा हिसाब भारत की ज्ञान परम्परा में मौजूद है और इसे किस धागे से बांधकर एकरूपता प्रदान किया जाए? इसका हिसाब भी विविध परम्पराओं में मौजूद है. **अंतर्विरोधों** को आत्मसात करते हुये यथार्थ के किसी एक पक्ष या आयाम की मीमांसा कैसे की जाए और उसे जीवन और समाज में कैसे उतरा जाए, इस विज्ञान को भी भारत ने अपनी ज्ञान परंपरा में विकसित किया है. **मानवीय सभ्यता और संस्कृति** का ऐसा कोई कोना नहीं जिसे भारत ने विकसित न किया हो. इन सबका आधार और दृष्टि का नाम **सनातन विद्या** ही है. सनातन विद्या से आशय ज्ञान की एक ऐसी विधा से है जिसमें **विज्ञान, तकनीक, दर्शन, धर्म, कला, रहस्य, प्रकृति, आध्यात्म, समाज, राजनीति, व्यापार** आदि जीवन और समाज के प्रत्येक पक्ष को अखंड रूप में अध्ययन करता है. जिसमें **निरपेक्ष ज्ञान** के साथ-साथ **भौतिक विज्ञान भी है और चेतना विज्ञान** भी.

सनातन विद्या की विधि

अब प्रश्न यह है की सनातन विद्या को किस विधि से जाना जा सकता है? सिर्फ जानने की विधि ही नहीं बल्कि सनातन तत्व के साथ किस तरह के संसार या सृष्टि की रचना की जा सकती है, उस विधि को भी जानने की आवश्यकता है. सर्वप्रथम, जानने की विधि पर विचार करते है, और उस विधि को **त्रिक सनातन विधि** कहा जाता है. अर्थात ऐसी विधि जिसमे तीन आयाम हो- **निगम, आगम और लौकिक एवं लोकायत.** ये तीनो आयाम मिलकर ही सनातन को एक विद्या के रूप में जाना जा सकता है. यद्धपि तीनो आयाम एक इकाई से पृथक होकर स्वतंत्र रूप में भी कार्य करते है किन्तु, उसका प्रभाव भी एकांगी ही होता है और अपनी **प्रमाणिकता एवं पूर्णता** के लिए अन्य दोनों आयामों के साथ उन्हें संयुक्त होना पड़ता है. इसके अतिरिक्त प्रत्येक आयाम की अपनी **आंतरिक स्वतत्रता** भी होती है जिसमें अन्य दो आयामों के लिए न केवल जगह होती है बल्कि उनकी संरचना में दोनों ही अनुस्यूत होते है. ये तीनो आयाम या घटक सनातन तत्व के ही त्रिविध रूप हैं, जो आत्यंतिक रूप से अपृथक है. इस प्रकार यह कहा जा सकता है की **साधन और साध्य** एक ही है. फिर भी प्रक्रिया की दृष्टि से उनमें अलगाओ का होना आवश्यक है. यहाँ, तीनो आयामो को विस्तार से समझना आवश्यक है.

निगम

निगम उस संरचना या इकाई को कहा जा जाता है जिसमे से तार्किक रूप से कुछ निगमित किया जा सके. इसमें कुछ आधारभूत विश्वास या अनुभवों को शाब्दिक रूप दिया जाता है, जो स्व प्रमाणित, स्व प्रकाश्य और असंदिग्ध होते है. ये अपनी सत्यता अथवा असत्यता के लिए किसी अन्य पर निर्भर नहीं होते है. ये स्वयं सिद्ध होते है ठीक ज्यामिति के प्रमेय के समान. इनकी शब्द संरचना निगमन तर्कशास्त्र के आधारभूत तर्कवाक्य के समान होते है. जिस प्रकार किसी निगमन अनुमान में निष्कर्ष और आधार वाक्य के बीच एक तार्किक सम्बन्ध होता है ठीक उसी प्रकार इस संरचना में अंतर्निहित वाक्यों में से कुछ अन्य वाक्य तार्किक रूप से निकाले जा सकते है जिनकी सत्यता अथवा असत्यता उस आधारभूत संरचना में अंतर्निहित होती है. इस संरचना की विषय सामग्री का स्वरूप बौद्धिक एवं अंत:प्रज्ञात्मक होती है, जो इतनी सहज और स्वभाविक होती है की उसमें प्रमाणिकता के लिए संदेह का कोई स्थान नहीं होता. इसके अतिरिक्त इस संरचना के सभी वाक्य अनुभव निरपेक्ष होते है अर्थात वाक्यों की सत्यता अथवा असत्यता किसी के अनुभव पर नहीं बल्कि तार्किक सम्बन्धों पर आधारित होते हैं. यह संभव है की निष्कर्ष के रूप किसी का अनुभव असत्य हो किन्तु, तार्किक रूप से वह वैध हो, इसके ठीक विपरीत निष्कर्ष के रूप में किसी का अनुभव सत्य हो किन्तु, तार्किक रूप से वह अवैध हो. सनातन विधि के इस आयाम को **निगमन विधि या निगम विधि** कहा जाता है. **वेद** इसी विधि का दूसरा नाम है.

वेद

वेद सनातन विद्या के निगम आयाम के आधारभूत ग्रंथ हैं जो अनेक ऋषियों द्वारा साक्षात्कार किये गए **ऋचाओं, मन्त्रों, सूक्तों** आदि के संग्रह और व्यास मुनि द्वारा सम्पादित है. वेदों की संख्या चार हैं **ऋग्वेद, यजुर्वेद. सामवेद और अथर्ववेद**. इनमे से पहले प्रथम तीन वेद ही मान्य थे किन्तु, बाद में अथर्व को भी चौथे वेद के रूप में मान लिया गया. इनके चार मुख्य भाग हैं-**संहिता, ब्राह्मण, अरण्यक और उपनिषद.** संग्रहित भाग को संहिता, मंत्र भाग को ब्राह्मण, मंत्र की व्याख्या भाग को अरण्यक और अंतिम भाग को उपनिषद कहा जाता है. वेदों के भी कई अलग-अलग **पाठ या संहिता** है. इसके अतिरिक्त प्रत्येक वेद के अलग-अलग कई **शाखाएं और भाष्य** है. इनमे से वेदों के कुछ ही **पाठ, शाखाएं और भाष्य** उपलब्ध है शेष के केवल नाम मिलते हैं वास्तविक रूप में अब तक उपलब्ध नहीं हैं. प्रत्येक वेद के एक एक उपवेद भी है-**आयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्ववेद और स्थापत्यवेद.** इन वेदों को सांगोपांग समझने के लिए छह अन्य विषयों की कल्पना की गयी है, जिसे वेदांग कहा जाता है वे हैं-**शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष.** भाषा शैली की दृष्टि से वेदों को **पद्य, गद्य और गायन** के रूप में विभाजित किया गया है. वेदों को **अपौरुषेय** भी कहा जाता है क्योंकि इन्हें किसी पुरुष अर्थात मनुष्य ने नहीं बल्कि यह प्रकृति प्रदत्य या इसे विराट पुरुष द्वारा व्यक्त किया गया है. वेद को **श्रुति** भी कहा जाता है, जिसका आशय **'ऐसा सुना गया है'** से है जो ब्रह्मा से लेकर विभिन्न ऋषियों की परंपराओं से होते हुए अब तक प्रचलित है. वेदों को **निगम** इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह **स्वप्रामान्य** होने से इसके भीतर वर्णित विभिन्न विषयों की सत्यता को निष्कर्ष के रूप में तार्किक वैधता के साथ से निगमित किया जा सके. वेदों में जीवन और जगत के प्रत्येक विषयों के ज्ञान के बारे में **आधार वाक्य** की तरह वर्णित है, जिसकी प्रमाणिकता न केवल असंदिग्ध है बल्कि श्रद्धेय भी है.

विधि के रूप में निगम **ज्यामिति** की तरह है जिसका मूल श्रोत निरपेक्ष तत्व **ब्रह्म या विष्णु** है जो शून्य, निर्गुण, निराकार के साथ-साथ सगुन, साकार और सृष्टि के रूप में मूर्तवान भी है. ब्रह्म अर्थात निरपेक्ष सत्ता जिससे देश, काल, जगत आदि अनंत रूप में सतत विकसित होती रहती है जैसे बीज वृक्ष के रूप में, दही दूध के रूप में विकसित होती है. इसमें कुछ भी नया नहीं है. जो भी द्रव्य कार्य रूप में व्यक्त होता है वह कारण रूप में पूर्व द्रव्य में अव्यक्त अवस्था में विद्यमान रहता है. सैधांतिक रूप से इसे **सत्कार्यवाद** कहा जाता है. सत्कार्यवाद ज्यामिति के प्रमेय की तरह ही कार्य करता है. निरपेक्ष तत्व से दो प्रकार की सृष्टि प्रक्रिया का जन्म होता है- प्रथम, वस्तु जगत के रूप में और द्वितीय, शब्द जगत के रूप में. शब्द जगत के रूप में सर्वप्रथम स्फोट के साथ **अनाहत, नाद, ध्वनि, वर्ण, शब्द, वाक्य** के रूप में ऋषियों की चेतना में प्रकट होते हैं. वेद वाक्यों के अर्थ त्रिस्तरीय अर्थात **आध्यात्मिक, आधि दैविक और आधि भौतिक** होने से यथार्थ का प्रकटीकरण और इसकी समझ एक इकाई के रूप मे व्यापकता के साथ पूर्ण रूप में अस्तित्ववान होती है. इस दृष्टि से सम्पूर्ण वैदिक साहित्य एक प्रकार से वेद का ही विस्तार है, जो **श्रुति और स्मृति** परम्परा से विस्तार पाती है. दोनो ही परम्पराएं स्वयं को वेद से जोड़ते हुए उसे अपना प्रमाण मानते हैं. यहाँ तक की वेदों में कही गयी सभी बातों को **धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष** के रूप में वर्गीकृत कर जीवन के वास्तविक धरातल में उतारकर **रामायण, महाभारत और पुराणों** की कथाओं में अभिव्यक्त कर दिया गया है.

इस प्रकार वेद या निगम विधि, ऊपर से नीचे की ओर अर्थात **वर्टिकल फार्मेट** में चलती है जो अनैतिहासिक और अदेशीय होने से **अनुभव निरपेक्ष** भी है. इसीलिए वेद को अनादि और अनंत कहा गया है. इसे किसी कालक्रम या इतिहास के किसी कालखंड विशेष से जोड़ा नहीं जा सकता है. लिखित रूप में यह हमारे समक्ष कब आयी? इस पर बहस हो सकती है या इसे ऐतिहसिक प्रमाणों पर छोड़ा जा सकता है. किन्तु, **विषयवस्तु, संरचना और परंपरा** की दृष्टि से वेद निगम के रूप में एक **अनैतिहासिक उत्पाद** है, ठीक उसी तरह जिस तरह से मानव मस्तिष्क में विचार और अनुभव बिना किसी क्रम और प्रक्रिया के कौंध जाते है. **ज्ञान के रूप में वेद** मनुष्य जाति की सबसे बड़ी उपलब्धि है, जिसे एक **प्रक्रिया या विधि** के रूप में **पुनर्पाठ** करने की आवश्यकता है.

आगम

आगम पद्धति निगम के ठीक विपरीत सनातन विद्या का **आनुभविक आयाम** है जिसकी सत्यता अथवा असत्यता शाब्दिक विश्वास की जगह व्यक्ति के अनुभव पर आधारित है. अनुभव सापेक्षता ही आगम का मूल आधार है. किसी की सत्ता को तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता जब तक वह मनुष्य के अनुभव में ना आ जाये. आगम प्रणाली भी ऊपर से नीचे की तरफ **वर्टिकल फार्मेट** में प्रवाहित होती है, अर्थात अनुभव का अर्थ इंद्रियानुभव नहीं बल्कि **तात्विक अनुभव** से है. निरपेक्ष तत्व का साक्षात्कार कैसे हो यही इस विधि का मूल विषय है. निगम में निरपेक्ष तत्व का साक्षात्कार **शाब्दिक संरचना अर्थात वेद** के रूप में होता है, जिसे परंपरा में **शब्द ब्रह्म** भी कहते है जबकि आगम में निरपेक्ष तत्व का साक्षात्कार **निशब्द** रूप में होता है, जिसे परंपरा में **बोधात्मक ज्ञान या शिवत्व ज्ञान** कहा जाता है. कभी-कभी इसे **आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान, निर्वाण, मोक्ष, मुक्ति, कैवल्य, सिद्ध** आदि विविध नामों से भी अभिहित किया जाता है. आगम प्रणाली की आवश्यकता इसलिए भी होती है, क्योंकि यदि निगम में आधारभूत विश्वास की सत्यता पर प्रश्न खड़ा हो जाए अथवा सत्यता या असत्यता संदिग्ध हो जाए तो इसका निराकरण केवल अनुभव से ही संभव होता है. **बौद्ध, जैन और चार्वाक** परंपरा में वेद की प्रमाणिकता पर इसी आधार पर चुनौती दी गयी थी. क्योकि तत्कालीन समय में वेद को जानने वालों के विचार और आचरण में अंतर्विरोध दिखाई दे रहा था. **बौद्ध, जैन और चार्वाक** वस्तुत: अनुभव पर जोर दे रहे थे. **तर्कशास्त्र** में भी यही नियम है निगमनात्मक तर्कवाक्यों की सत्यता की जांच आगमनात्मक तर्क प्रणाली में ही की जाती है. विज्ञान का प्रयोगात्मक अनुभव इसी सिध्यांत पर आधारित है. इसके साथ ही अनुभव को सर्वमान्य और सार्वभौमिक बनाने के लिए कुछ आधारभूत नियमों एवं मान्यताओं की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति निगम प्रणाली से की जाती है. इस प्रकार **निगम को आगम की और आगम को निगम प्रणाली** की आवश्यकता होती है. स्वरूप की दृष्टि से दोनों परस्पर विपरीत होते हुए भी कार्य की दृष्टि से एक दूसरे की पूरक भी है.

आगम को तंत्र और यामल भी कहा जाता है, हलाँकि सूक्ष्म रूप से इनमे अंतर है. आगम का सम्बन्ध शिव तत्व से, तंत्र का सम्बन्ध शक्ति तत्व से और यामल का सम्बन्ध शिव-शक्ति के युगल से है. किन्तु व्यापक अर्थ में सभी तत्व अनुभव के श्रेणी में आते हैं, इसलिए इन सबके लिए **आगम** शब्द ही ज्यादा उपयुक्त है. आगम शब्द का अर्थ है जो हमारे भीतर आता है अर्थात अनुभव हमारे भीतर आता है और बाद में यही अनुभव विश्वास में, तत्पश्चात धीरे-धीरे विश्वास दृढ होकर श्रृद्धा और आस्था के रूप में रूपांतरित हो जाता है. आगम परंपरा में निरपेक्ष तत्व को **परम शिव** के रूप में स्वीकार किया गया है. अनुभव की दृष्टि से कुल **छत्तीस तत्व** हैं, जिनसे होकर अनुभव की सम्पूर्ण प्रक्रिया घटित होती है जो इस प्रकार है- **पञ्च महाभूत, पञ्च तन्मात्रा, पांच ज्ञान इन्द्रियां, पांच कर्म इन्द्रियां, मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति, पुरुष** कुल पचीस तत्व जो निगम परंपरा में भी स्वीकार है. किन्तु, आगे के ग्यारह तत्व केवल आगम परंपरा में ही स्वीकार है-**षड कंचुक (नियति, काल, राग, विद्या, कला, माया), शुद्ध विद्या, ईश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव.** ये सभी तत्व मनुष्य के अनुभवात्मक चेतना के सोपान हैं जो आरोह और अवरोह के क्रम से चलायमान है. इसमें **अद्वैत, द्वैत और द्वैताद्वैत** तीनो दृष्टियों का समावेश है. इन दृष्टियों के ही भीतर **प्रतिभिज्ञा, स्पंदन, कौल और क्रम नामक** दार्शनिक परम्पराएँ भी है जिसकी परम अभिव्यक्ति **कश्मीर दर्शन** के उद्भट विद्वान् **अभिनवगुप्त** के **तन्त्रालोक** नामक ग्रंथ में हुआ है. ब्रहमांड की संरचना के मार्ग में चलने हेतु **षडाध्व** अर्थात छ मार्ग बताये गए है जो वस्तुनिष्ठ और आत्मनिष्ठ दृष्टि से तीन-तीन मार्ग बताये गए है- वस्तुजगत की दृष्टि से **भुवनाध्व, तत्वाध्व और कलाध्व** एवं भाषा की दृष्टि से **पदाध्व, मंत्राध्व और वर्णाध्व** हैं. इसी प्रकार शिवत्व के बोध हेतु चार उपायों की कल्पना की गयी है- **आनोपाय, शाम्भोपाय, शाक्तोपाय और आणोपाय.** इन उपायों के अंतर्गत विश्व के सभी उपायों को अंतर्भूत कर लिया गया है. इसी परंपरा में **भैरव विज्ञान** नामक ग्रंथ में ध्यान की एक सौ बारह विधियों का भी उल्लेख है.

अनुभव केवल **आनंदमय और विवेकयुक्त** ही न हो बल्कि उनमे **क्रियात्मकता** भी हो इसके लिए **शक्ति** तत्व को भी स्वीकारा गया है जो स्पंदन अर्थात क्रिया के रूप में अनुभव के साथ संपृक्त रहता है. स्पंदन का विस्तृत उल्लेख भट्ट कल्लट की पुस्तक **स्पन्दंकारिका** में है. **श्रीविद्या** की परंपरा का विकास भी इसी आगम परपरा में विकसित हुआ है. यद्दपि अनुभव के केंद्र में निरपेक्ष तत्व शिव ही किन्तु इसकी परिधि में **भौतिक अनुभवों** को भी न केवल समाहित किया गया है बल्कि उसके प्रति पूरा सम्मान रखा गया है और एक अर्थ में भौतिक अनुभवों को अनिवार्य भी माना गया है, जिसे **कुल परंपरा** का नाम दिया गया है. काल की दृष्टि से अनुभवों का भी एक क्रम होता है, जिसे समय की इकाइयों से नापा जाता है. इसीलिए यह माना गया है की मुक्ति अनऐतिहासिक अर्थात **सद्धो** होने के साथ साथ **क्रमिक** भी होती है. अनुभव की इस परंपरा को **क्रम** परम्परा का नाम दिया गया है.

इस प्रकार सनातन विधि या आयाम में आगम के तहत भौतिक अनुभव सहित हर प्रकार के अनुभवों को शामिल किया गया है, किन्तु अनुभव के केंद्र में निरपेक्ष तत्व या तो **शिव है या शक्ति अथवा दोनो** जिसका स्वरूप **आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक** अर्थात **त्रिक** मय है.

लौकिक एवं लोकायत

सनातन विधि के लौकिक एवं लोकायत आयाम से आशय सत्य को जानने की विशुद्ध **भौतिक, वैज्ञानिक और ऐतिहासिक नियमों के सिध्यांतों एवम प्रक्रियाओं** से है. दैनिक जीवन के अनुभवों और समस्यायों का साक्षात्कार करते हुए **तर्क और सामान्य अनुभव** के आधार पर व्यक्ति और समाज की समस्यायों का समाधान निकालते हुए प्रकृति के रहस्यों से पर्दा उठाना ही लौकिक का उद्देश्य है. **लौकिक एवं लोकायत विधि** आगम और निगम विधि के ठीक विपरीत नीचे से ऊपर की ओर जाने की प्रक्रिया है. किन्तु, यह वर्टिकल फार्मेट में न होकर बल्कि **होरिजेंटल फार्मेट** में होता है जो सीधी रेखा की तरह गतिमान होती है. लौकिक विधि की आधारभूत मान्यता है की जीवन और जगत किसी अतीन्द्रिय सत्ता के द्वारा संचालित न होकर विशुद्ध भौतिक और गणित के नियमों द्वारा संचालित होती है. **आध्यात्मिकता** के लिए यहाँ कोई जगह नहीं है. आध्यत्मिक अनुभवों एवं घटनाओं को उसी सीमा तक स्वीकार किया जाता है जितना की उसकी भौतिक और गणतीय व्याख्या संभव हो सके.

ऐसा माना जाता है की आधुनिक विज्ञान का आरम्भ यूरोप के पुनर्जागरण काल से होते हुए वर्तमान समय तक पहुंचा है. यूरोप का विज्ञान यह मानकर चलता है की **धर्म और आध्यात्मिकता** व्यक्तिगत जीवन और विश्वास तक ही सीमित होना चाहिए. सार्वजनिक जीवन में **पंथनिरपेक्षता, विज्ञान, तकनीक, लोकतंत्र, राज्य, कानून, प्रशासन, अर्थशास्त्र, व्यवसाय, सैन्यशक्ति, इतिहास, समाज एवम संस्कृति** के भौतिक नियमों की भूमिका होनी चाहिए. सार्वजनिक जीवन में **विज्ञान** और व्यक्तिगत जीवन में **ईसाइयत** की इसी भूमिका के आधार पर यूरोप ने पूरी दुनिया में लोगों को सभ्य बनाने के नाम पर **औपनिवेशिक और साम्राज्य वादी** उदेश्यों को अब तक पूरा करते रहे हैं. कमोवेश **समाजवाद और साम्यवाद** भी विज्ञान और राजनीतिक विचार को **धर्म** की तरह इस्तेमाल करके कुछ इसी तरह के मनोवृतियों का शिकार होकर लोगो को तथाकथित रूप से **सभ्य** बनाने की कोशिश करते रहे हैं.

आधुनिक विज्ञान का विकास भले ही यूरोप में हुआ हो किन्तु, विश्व इतिहास में ऐसा कोई समाज नहीं जहाँ वैज्ञानिक चिंतन का बीज न मिलता हो. वैज्ञानिक चिंतन अर्थात **कार्य-कारण और संभावना एवं अनिश्चितता** की अवधारणा पर आधारित **आनुभविक तार्किक चिंतन**. किन्तु, ऐसा माना जाता है की **संगठित, प्रायोगिक और उपकरणात्मक** विज्ञान गैलेलियों से प्रारम्भ होता है. इसके पूर्व का योरोपीय चिंतन भी अरस्तू के मात्र सैध्यांतिकी पर टिका था. भारत के बारे में भी ज्यादातर विद्वानों की यही धारणा है की यहाँ वैज्ञानिक परंपरा केवल सैध्यांतिक स्तर पर ही थी. **परमाणु, शून्य, अनंत, रासायनिक द्रव्य, खगोलीय गणना** आदि की खोज महज सैध्यांतिक स्तर तक ही सीमित रही है, इनका कोई प्रायोगिक आधार नहीं रहा है. वस्तुत: यह धारणा भी भ्रम पर आधारित है. भारत में भी वैज्ञानिक अवधारणाओं को प्रयोग और निरीक्षण के ही आधार पर स्थापित किया जाता रहा है. यदि ऐसा न होता तो हमारे यहाँ भौतिक उन्नति नहीं हो पाती. अब तो यह सर्वविदित तथ्य है की **सत्राहवीं शताब्दी तक विश्व के कुल जीडीपी का लगभग एक चौथाई** हिस्से का योगदान भारत देता रहा है. विश्व पटल पर जो आज **अमरीका की आर्थिक स्थिति** है भारत की ऐसी स्थिति सदियों तक रही है. भारत को यूँ ही **सोने की चिड़िया** नहीं कहा जाता रहा है. भारत की आर्थिक उन्नति से प्रभावित होकर ही दुनियां भर से लोग यहाँ आते रहे हैं.

आधुनिक विज्ञान का शायद ही ऐसा कोई **मौलिक आधारभूत सिध्यांत एवं नियम** हो जिसकी खोज भारत के विज्ञान परंपरा में न मिलता हो उदाहरण के लिए- **'अगस्त संहिता'** में विद्युत एवं बैटरी की विधि का वर्णन, कणाद के वैशेषिक दर्शन में **प्रशस्तपाद** द्वारा लिखित भाष्य में न्यूटन के गति के तीन नियमों की ही तरह गति की व्याख्या करना, उदयन की **'न्यायकारिकावली'** ग्रंथ में पदार्थ के लोचकता (Elasticity) के गुण का वर्णन, राजा भोज द्वारा लिखित **'समरांगण सूत्रधार'** एवं **'यंत्रार्णव'** ग्रंथ में हाईड्रोलिक मशीन एवं यंत्रों की गति का वर्णन, ऋषि भारद्वाज के **'विमानशास्त्र' एवं यंत्रसर्वस्व** में वायुयान का वर्णन, धातु विज्ञान के संदर्भ में विभिन्न धातुओं को परिष्कृत करने की विधियों का वर्णन **अथर्ववेद, रसतरंगिनी, रसायनसार, रसरत्न समुच्चय, शुक्रनीति, आश्यलायन गृहसूत्र, मनुस्मृति** में किया गया है. बोधायन के **'शुल्ब सूत्र'**, में ज्यामिति की विविध अवधारणाएं एवं बोधायन प्रमेय जिसे बाद में पायथागोरस प्रमेय के नाम से प्रचलित हुआ, **दशमलव, शून्य, इनफैनाईट, पाई का मान, कैलकुलस**, गणना की वैदिक गणित पद्धति एवं **अंकगणित, बीजगणित, त्रिकोणमिति** आदि में **आर्यभट्ट, भास्कराचार्य, बोधायन** जैसे गणितज्ञों के योगदान को कौन नहीं जानता? कालगणना की जितनी व्यापक और सटीक गणना भारत में की गयी है वह चकित करने वाली है. **पंचांग, कैलेण्डर** आदि इसके प्रमाण

है जिसमें **संवत्सर, मन्वंतर, कल्प, युग, वर्ष, आयन, माह, पक्ष, सप्ताह, दिन, मुहुर्त** आदि समय की इकाईयां है जो सृष्टि के आरम्भ से लेकर प्रलय तक का पूरा हिसाब रखतीं है.

खगोल विज्ञान के क्षेत्र में भी भारत की उल्लेखनीय उपलब्धि रही है यथा- ऋग्वेद के प्रथम मंडल में **प्रकाश की गति** का वर्णन है जो आधुनिक विज्ञान की गणना के बहुत निकट है, **गुरुत्वाकर्षण** की अवधारणा के बारे में भास्कराचार्य ने **'लीलावती'** में जिक्र किया है. इसी प्रकार पृथ्वी की गति के बारे में गैलेलियो के बहुत पहले **आर्यभट्ट** ने बता दिया था की पृथ्वी अपने अक्ष में घूमते हुए सूर्य का चक्कर लगाती है. विभिन्न ग्रहों की दूरियों का वर्णन भी आर्यभट्ट ने वेधशालाओं के निरीक्षण के आधार पर किया था. जो वर्तमान गणना के बहुत करीब है. **स्थापत्यशास्त्र** के अंतर्गत **घर, नगर, महल, मंदिर, तालाब, बगीचा, नहर, बाँध, नाव, जहाज, किला, पुल, सड़क, नाली** आदि विविध संरचनाओं के निर्माण की विधियों का विस्तार से अध्ययन किया जाता रहा है. **आयुर्वेद** के तहत शल्य चिकित्सा सहित स्वास्थ के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नत अवस्था रही है, यह सर्वविदित तथ्य है. **चरक, सुश्रुत, वागभट्ट, जीवक** आदि उल्लेखनीय चिकित्सा वैज्ञानिक रहें है. महामुनि **पाराशर** द्वारा रचित **'वृक्ष आयुर्वेद'** में वृक्षों के बारे में, **'शालिहोत्रसंहिता'** में अश्व चिकित्सा और **'चरक संहिता'** में विभिन्न प्राणियों के बारे में भी वर्णन आता है. **कृषि** के बारे में **ऋग्वेद, चरक एवं सुश्रुत संहिता** में व्यापक चर्चा मिलती है.

इस प्रकार भारत **विज्ञान, तकनीक और शिल्प** के क्षेत्र में भी पर्याप्त उन्नति की थी, किन्तु अंग्रेजों के आने के बाद उनके षड्यंत्रों ने और उनके द्वारा स्थापित शिक्षा पद्धति ने भारतीय मानस पटल में इन सबको विस्मृत करा दिया और हमें यह बताया गया की हम केवल **धार्मिक और आध्यात्मिक** देश रहे हैं, **विज्ञान और तकनीक** तो उनके बाद यहाँ आई है. गांधीवादी विचारक **धर्मपाल** का काम इस क्षेत्र में उल्लेखनीय है. उन्होंने अपनी पुस्तक **'इन्डियन साइंस एंड टेक्नोलोजी इन ऐतींथ सेंचुरी'** में इन सब पर विस्तार से चर्चा किये हैं. अंग्रेजों द्वारा फैलाये गए अकादमिक दुष्प्रचार के शिकार देश के **वामपंथी**, तथाकथित **सेक्लुर और आध्यात्मिक किस्म** के लोग भी रहे हैं. इसमें कोई शक नहीं की वर्तमान तकनीकी विकास में यूरोपीय देशों की अहम् भूमिका रही है, जिसे निश्चित रूप से स्वीकार करना चाहिए. दरअसल पश्चिम में **विज्ञान** से आशय **तथ्यों का विभक्तिकरण, उनकी क्रमबद्धता और तुलनात्मक अध्ययन** से है जबकि सनातन परंपरा में विज्ञान को हमेशा ही ज्ञान से जोड़कर देखा गया है. ज्ञान से आशय **तात्विक या आत्मज्ञान** से है. विज्ञान तब तक अधूरा है जब तक ज्ञान से उसका सम्बन्ध न हो जाए. इसी प्रकार ज्ञान तब तक दूसरों के लिए अनुपयोगी है जब तक वह विज्ञान से न जुड़ जाए. इसलिए भारत में **विज्ञान और ज्ञान** की समझ ज्यादा व्यापक और संगठित है.

भारत में भौतिक और इह लौकिक चिंतन की परंपरा **ऋषि बृहस्पति, शुक्राचार्य और चार्वाक** जैसे दार्शनिकों द्वारा विकसित होती रही है, जिसको प्रमुखता से रेखांकित करने का काम **डी. पी. चट्टोपाध्याय, रामविलास शर्मा** जैसे चिंतकों द्वारा किया जाता रहा है. इतना ही नहीं वैदिक ढाँचे में भी **न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग और यहाँ तक की मीमांसा दर्शन** भी ईश्वर रहित भौतिक-मानसिक तत्वों पर ही चिंतन होता रहा है. केवल अद्वैत वेदांत परंपरा में ईश्वर और आध्यात्मिकता पर चिंतन हुआ है और जगत को माया कहा गया है. वेदांत की अन्य परंपरा जैसे **द्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत** में जगत को माया की जगह यथार्थ रूप में स्वीकार करते हुए ईश्वर या भगवान् को **प्रेम, करुणा, अनुग्रह, सेवा** आदि मानवीय कोमल भावनाओं के साथ स्वीकार किया गया है. **आगम परम्परा** में भी जगत को उसकी वास्तविकता के साथ स्वीकार किया गया है. बल्कि यह दर्शन भौतिकता का पूरा उपभोग करके ही क्रमिक मुक्ति की ओर प्रेरित करता है. अद्वैत वेदांत दर्शन में भी इस जगत को **पारमार्थिक दृष्टि से माया कहा है** व्यवहारिक दृष्टि से उसे भी सत्य ही माना गया है.

इस प्रकार हम देखते है की सनातन परंपरा में भौतिक जीवन को आध्यात्मिक जीवन के साथ जोड़कर देखा गया है, उससे अलग नहीं. यह तथ्य उल्लेखनीय है की जो विचारक सनातन परंपरा में केवल भौतिक जीवन की परंपरा को देखते हैं या जो केवल आध्यात्मिक परंपरा का ही गुणगान करते हैं अथवा जो केवल दैवीय, यज्ञ, कर्मकांड या सूक्ष्म विज्ञान को मात्र रेखांकित करते है वे केवल अर्ध सत्य से परिचित होते है, पूरे सत्य से नहीं. कुछ विचारक जैसे **मार्क्सवादी चिन्तक** वेदों में केवल **भौतिक जीवन** खोजते है **अरविन्द और गोविन्द चन्द्र पांडे** जैसे चिन्तक केवल **आध्यात्मिकता** खोजते है और **सायण एवं ब्राह्मण** लोग केवल दैविक शक्तियों को देखते है, वास्तव में वेद या निगम के प्रति उनकी यह संकुचित दृष्टि ही है. वस्तुत: वेदों में इन तीनों का समन्वय है. इसीलिए सनातन विद्या में **परा अर्थात आध्यात्मिक और अपरा अर्थात भौतिक विद्या** की चर्चा आती है, जिसे जो चाहिए वह ले ले. **अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष** की प्राप्ति अपरा और परा दोनों विद्याओं के प्राप्त होने से ही संभव है.

विमर्श

निगम, आगम और लौकिक एवं लोकायत से सम्बंधित कुछ स्वाभाविक प्रश्न हैं जिनपर विचार होना अपेक्षित है. वेद क्या **बाईबिल, कुरआन** आदि के समान एक धार्मिक-आध्यात्मिक ग्रंथ हैं ? या कुछ और?, क्या वेद पर केवल हिन्दुओं का दावा है या यह सम्पूर्ण मानव जाति की उपलब्धि है? क्या वैदिक ज्ञान और विज्ञान केवल हिन्दुओं या सनातनियों पर ही लागू होता है या संपूर्ण मानव जाति पर? क्या वेदों का अध्ययन-अध्यापन केवल ब्राहमणों तक सीमित है या समस्त जातियों, वर्णों, समुदायों, देशों, स्त्री, पुरषों, सभी देशों और सभी मानव प्रजातियों तक के लिए भी खुला है? चूँकि वेदों को छोड़कर शेष सभी धर्मों के मूल पवित्र ग्रंथ बाईबिल, कुरआन आदि किसी **एक मसीहा, पैगम्बर या महामानव** के द्वारा बोला गया है. इसीलिए उनके द्वारा किसी एक **पंथ, मजहब, सम्प्रदाय या विशिष्ट पूजा पद्धति** पर चलने के लिए जोर दिया जाता है और जो इस पर विश्वास करता है इनकी बातें उन्हीं पर लागू होती है, शेष अन्य लोगों पर नहीं. लेकिन वेद अनेक **ऋषियों, मुनियों और महमानवों** द्वारा साक्षात्कार किये गए प्राकृतिक सत्य हैं जो स्वरूप की दृष्टि से

धार्मिक-आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक, सामजिक, कला, साहित्य, शिल्प, तकनीक आदि समस्त ज्ञान-विज्ञान विधाओं से संपृक्त हैं. **यह अनेक मार्गों पर विश्वास करता है.** इसलिए यह कोई **धार्मिक ग्रंथ नहीं है.** चूँकि वैदिक ज्ञान सृष्टि के रहस्यों को उद्घाटित करता है, इसलिए उद्घाटित सत्य लिंग, जाति, क्षेत्र, समुदाय, देश आदि से परे सम्पूर्ण मनुष्य जाति पर लागू होता है फिर चाहे वे इन सत्यों पर विश्वास करे या नहीं. हाँ, व्यवहारिक और प्राकृतिक गुण की दृष्टि से इसका प्रयोग देश, काल और परिस्थिति के अनुसार होता है. इसलिए यह सम्पूर्ण मनुष्य जाति की सम्पदा है. हाँ, इसे **हिन्दुओं द्वारा भारत भूमि** में लाया गया है इसलिए उन्हें इसका श्रेय दिया जाना चाहिए. ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कोई वैज्ञानिक जब किसी चीज की खोज करता है तो खोज के पश्चात वह सम्पूर्ण मानव जाति की उपलब्धि मानी जाती है किन्तु, खोज का श्रेय तो उस वैज्ञानिक को ही जाता है. वेदों का अध्ययन-अध्यापन **लिंग, जाति, क्षेत्र, समुदाय, देश** आदि से परे सभी के लिए है. किन्तु, जिस प्रकार **विशिष्ट ज्ञान एवं तकनीक** को जानने के लिए **विशिष्ट गुण, योग्यता और अनुशासन** की आवश्यकता होती है ठीक इसी प्रकार परम्परा में यह कार्य **ब्राह्मणों** को दिया गया था. लेकिन कालांतर में कुछ **ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक** कारणों से **शूद्र, दलित और स्त्री** को इससे वंचित कर **ब्राह्मणों में नकारात्मक श्रेष्ठता** का भाव आ गया जिससे समाज में विकृति आयी जो न केवल निंदनीय है बल्कि सनातन परंपरा के विरुद्ध भी है. किसी भी प्रकार की **जातिवाद, छुआछूत और अमानवीय भेदभाव** को वैदिक परम्परा समर्थन नहीं करती है.

आगम के संबंध में प्रायः प्रश्न पूछा जाता है की **व्यक्तिगत भोग** के सभी रूपों जैसे **पञ्च मकार** आदि को भी स्वीकार करने से **सामाजिक नैतिकता एवं सक्रियता** की समस्या उठ खड़ी होती है, तो इस समस्या का समाधान क्या है? दरअसल भोग को **उदात्त व्यक्तिगत स्वतंत्रता** के अर्थ में लिया गया है न की **अनियंत्रित उच्चश्रृंखलता के अर्थ में**, जिसमें दूसरों के भोग अर्थात नैतिकता का भी ध्यान रखा जाता है. व्यक्तिगत सक्रियता का उद्देश्य भी **मानवीय और सामाजिक सक्रियता** से जोड़कर ही देखा गया है. किन्तु, इस परंपरा का भी दुरुपयोग होने से इसे **निंदनीय और समाज द्वारा प्रायः उपेक्षित** रखा गया. इसलिए हमें आगम के यथार्थ रूप को ही अपनाना चाहिए जिसमें **अनुशासन और उदात्तता** दोनों का भाव है.

इसी प्रकार सनातन में वैज्ञानिक परम्पराओं और अनुसंधानों के बारे में प्राय: यह कहा जाता है की यदि आधुनिक विज्ञान की अधिकाँश मौलिक खोजे पूर्व में ही **वेदों और शास्त्रों** में खोज लिया गया है तो आधुनिक खोज होने के बाद ही यह घोषणा क्यों की जाती है, की यह तो हमारे यहाँ पहले से ही मौजूद है और यदि हमारे यहाँ पहले से ही सब कुछ था तो भविष्य में होने वाली सभी खोजों को व्यापक मानवीय हित में हम आज ही उसकी **घोषणा क्यों नहीं कर देते?** दरअसल सनातन विद्या इस बात का दावा करती है की हमने सृष्टि के सारे रहस्यों से पर्दा उठा लिया है जिसमें आधुनिक विज्ञान द्वारा खोजे गए समस्त आधारभूत नियम एवं सिध्यांत भी शामिल है. उपनिषद के ऋषि बार बार **'अहम् ब्रह्मास्मि', 'तत्वमसि' 'सर्वं खल्लविदं ब्रह्म', शिवोहं** जैसे महावाक्यों के माध्यम से इस तथ्य की घोषणा करते है और यह भी कहते है की **'यद् पिंडे तद ब्रह्मांडे'** अर्थात जैसा व्यक्तिगत सत्ता की संरचना है वैसी ही ब्रह्माण्ड की संरचना होने से व्यक्ति अर्थात स्वयं को जानने पर पूरे ब्रहमांड को जान लिया जाता है. जानने का अर्थ विज्ञान के समस्त नियमों के मूल श्रोत या **'सिंगल यूनिवर्सल लॉ'** या **सार रूप** में जानने से है. यही ज्ञान, विज्ञान और तकनीक के रूप में तत्कालीन **भौगोलिक-प्राकृतिक परिवेश, समाज और संस्कृति** के मूल्यों के अनुसार प्रयोग में लाये जाते है. इसी अर्थ में यहाँ **सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग** जैसे चार युगों की चर्चा आती है. इसलिए सनातन का दावा सार रूप में सब कुछ जानने से है किन्तु, व्यवहारिक दृष्टि से जानना देश, काल और परिस्थितियों पर निर्भर है. इसलिए सार रूप में **भविष्य की खोजों की भविष्यवाणी** की जा सकती है किन्तु, तथ्य के रूप में हमें आने वाले समय पर निर्भर होना होगा. **भविष्य पुराण और काल गणना** का उदहारण हमारे समक्ष प्रमाण के रूप उपस्थित है.

इसके अतिरिक्त नालंदा जैसे समृद्ध विश्वविद्यालय को जलाने, सनातन शिक्षा प्रणाली को खत्म करने, शास्त्रों के साथ छेड़छाड़ करने, औपनिवेशिक दृष्टि से व्याख्या करने, संस्कृत भाषा को व्यापक रूप से न जानने और लगातार भारत में लम्बे समय तक हमला होते रहने से **ज्ञान-विज्ञान की सतत प्रवाहित धारा की श्रृंखलाओं की कड़ियाँ** बिखर जाने से हमारे समक्ष ज्ञान परंपरा का स्पष्ट चित्र उभरकर नहीं आ पाता है. इसके लिए हमें और अध्ययन की आवश्यकता होगी. हमें इस तथ्य को भी स्वीकार करना चाहिए की केवल अतीत के **ज्ञान की पूँजी** के दम पर ही नहीं रहना है, हमें उसमे अपनी तरफ से कुछ जोड़ना भी है, तभी ज्ञान के अनंत प्रवाह की धारा अविच्छिन्न रूप से बहता रहेगा. **सनातन** शब्द की सार्थकता भी इसी में है.

निष्कर्ष

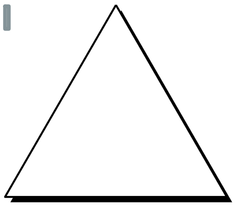

उपर्यक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है की **निगम, आगम और लौकिक** इन तीन आयामों या घटकों से मिलकर **त्रिक सनातन विधि** का निर्माण होता है जिसके प्रयोग से व्यक्तिगत स्तर पर निरपेक्ष सत्य का साक्षात्कार कर सापेक्ष विश्व का सृजन अथवा सापेक्ष विश्व के सामान्य अनुभव से **निरपेक्ष सत्य** का बोध हो सकता है. इसी प्रकार सामजिक स्तर पर व्यक्तिगत सत्य के आधार पर **निरपेक्ष व्ययवस्था का बोध** एवं व्यक्तिगत स्तर पर सामाजिक सत्य के आधार पर सापेक्ष विश्व का निर्माण किया जा सकता है. ध्यातव्य है की निगम और आगम में **अंतर्विरोध का नियम (Law of Contradiction)** कार्य करता है तो यही आगे चलकर ऐतिहासिक प्रक्रिया एवं अनैतिहासिक अभिव्यक्ति के क्षण में इसमें **सहयोग का नियम (Law of Association)** कार्य करता है, तत्पश्चात सामाजिक स्तर पर **भौतिक विश्व बोध की पहचान** एवं व्यक्तिगत स्तर पर आध्यात्मिक **सत्ता की पहचान (Law of Identity)** का साक्षात्कार होता है. इस विधि में **भौतिकता, आध्यात्मिकता और सूक्ष्म विश्व** (क्वांटम वर्ल्ड) के बीच त्रिस्तरीय एकीकरण है.

पश्चिम की दृष्टि से **त्रिक सनातन विधि** में **कार्लमार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और हेगल के द्वंद्वात्मक प्रत्ययवाद** तथा **पूँजीवादी** उपभोगतावाद पर आधारित **भौतिकवाद** के बीच सुन्दर समन्वय है. यह विधि केवल त्रिआयाम के बाहर घटित नहीं होती बल्कि इनके भीतर भी घटित होती है, जैसे निगम में वेद मंत्रों की व्याख्या के लिए **ऋषि, देवता और छंद,** आगम में अनुभवों की व्याख्या के लिए **शिव, शक्ति और जीव** तथा लौकिक में भौतिक नियम की व्याख्या के लिए **विरोध, सहयोग और तादात्म** के नियम एवं दार्शनिक दृष्टि में **अद्वैत, द्वैत और बहुतत्वाद** कार्य करता है. इसे यदि चित्र के माध्यम से समझा जाए तो निगम और आगम के लिए **दो वर्टिकल भुजाएं**, लौकिक के लिए एक **क्षैतिज भुजा** तथा निरपेक्ष सत्य के **व्यक्तिगत बोध** एवं **सामाजिक-भौतिक सत्ता** के लिए बिंदु को प्रतीक के रूप में मान लिया जाए तो इसका रूप इस प्रकार होगा:

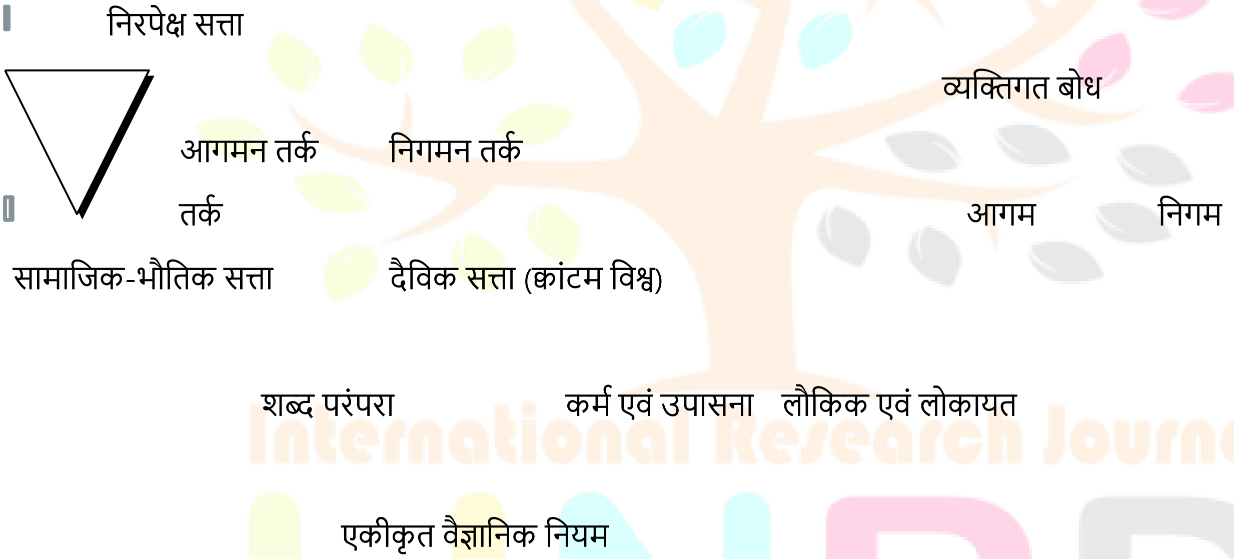

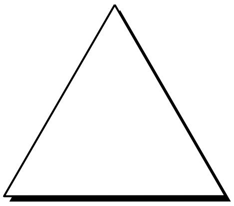

यदि भौतिक, आध्यात्मिक और दैविक (क्वांटम विश्व) स्तर के तीनो **त्रिभुजों** को आपस में जोड़ दें तो **श्रीयंत्र** का प्रारंभिक रूप बन जायेगा जो ज्ञान और विज्ञान की उत्पत्ति का प्रतीक है, जिसकी व्याख्या **सनातन विद्या** में सदियों से होती रही है.

इस प्रकार दुनियां को **समझने, बदलने और जीने** के लिए हमें **त्रिक सनातन विधि (Tri Sanatan Methodology)** को अपनाना होगा. इसी विधि के प्रयोग से ही हमें **सनातन विद्या (Sanatanology)** के मूल मंतव्यों को समझने में मदद मिलेगी एवं सर्जनात्मकता के लिये **मुक्ति, सृष्टि और वृत्ति-युक्ति की त्रिवेणी** से नये संसार और समाज को बनाने में सफलता मिलेगी और इसी **समझ और सफलता** से ही मानव और उसके समाज के अध्ययन के लिए हमारे समक्ष नये क्षितिज खुलेंगे.

संदर्भ ग्रंथ सूची

ओरियंटलईज्म: *एडवर्ड डब्लू. सईद* (1979) निउयार्क; विंटेज अ डिविजन ऑफ़ रैंडम हाउस

वैदिक संस्कृति के विविध आयाम: *अरुण कुमार जयसवाल* (2000) नई दिल्ली; ललित प्रकाशन

अ क्रिटिकल स्टडी ऑफ़ फिलोसोफी ऑफ़ स्वामी दयानंद सरस्वती: स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती (2010) नई दिल्ली; विजय कुमार गोविन्ददास हासानंद प्रकाशन

वैदिक साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास: *डॉ जयदेव विद्यालंकार* (1991) चंडीगढ़; हरियाणा साहित्य अकादमिक

दी सीक्रेट ऑफ़ वेद: *महर्षि अरविंद* (1956) पोंडिचेरी; अरविंद आश्रम

तंत्रालोक: *अभिनय गुप्त* (1997) नई दिल्ली; मोतीलाल बनारसी दास

इन्डियन साइंस एंड टेक्नोलोजी इन दी ऐतींथ सेंचुरी: *धर्मपाल* (2000) नई दिल्ली; अदर इंडियन प्रेस

भारतस्य विज्ञान परंपरा *(संकलन)* (2001) नई दिल्ली; संस्कृत भारती

लोकायत: अ स्टडी इन ऐनसिएंट इंडियन मटीरियलइज्म : *डी. पी. चट्टोपाध्याय* (1959), नई दिल्ली; प्युपिल्स पब्लिशिंग हाउस

भारतीय दर्शन में क्या जीवन और क्या मृत: *डी. पी. चट्टोपाध्याय* (1976) नई दिल्ली; प्युपिल्स पब्लिशिंग हाउस

International Research Journal
IJNRD
Research Through Innovation